नईदुनिया

संपादकीय

परिसीमन का नया फार्मूला भारतीय लोकतंत्र की अगली चुनौती

भारत में लोकसभा सीटों के परिसीमन को लेकर एक बार फिर व्यापक बहस शुरू हो गई है। हाल ही में सामने आए नए प्रस्ताव में संकेत दिया गया है कि राज्यों में लोकसभा सीटों की संख्या में लगभग 50 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है, जबकि सीमित स्तर पर सीटों का पुनर्गठन होगा। यह केवल चुनावी गणित का विषय नहीं, बल्कि संघीय ढांचे, लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व और क्षेत्रीय संतुलन से जुड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है।

वर्तमान में लोकसभा में 543 निर्वाचित सदस्य हैं। पिछले कई दशकों में देश की जनसंख्या तेजी से बढ़ी है, लेकिन सांसदों की संख्या लगभग स्थिर बनी हुई है। परिणामस्वरूप एक सांसद पर मतदाताओं का बोझ लगातार बढ़ा है और कई संसदीय क्षेत्रों में प्रभावी जनप्रतिनिधित्व चुनौती बन गया है। इसलिए सीटों की संख्या बढ़ाने का विचार स्वाभाविक और आवश्यक माना जा सकता है।

हालांकि परिसीमन का प्रश्न केवल जनसंख्या के आधार पर सीटों के पुनर्वितरण तक सीमित नहीं है। भारत एक संघीय लोकतंत्र है, जहां राज्यों के बीच राजनीतिक संतुलन भी उतना ही महत्वपूर्ण है। यदि केवल जनसंख्या को आधार बनाया गया तो अधिक जनसंख्या वृद्धि वाले राज्यों को लाभ मिलेगा, जबकि दक्षिण भारत सहित वे राज्य, जिन्होंने जनसंख्या नियंत्रण में उल्लेखनीय सफलता हासिल की है, अपनी राजनीतिक हिस्सेदारी घटने की आशंका जता रहे हैं। ऐसे राज्यों का तर्क है कि राष्ट्रीय नीति के अनुरूप किए गए उनके प्रयासों का प्रतिकूल परिणाम नहीं होना चाहिए।

इसी कारण नए प्रस्ताव में सभी बड़े राज्यों की सीटों में लगभग समान अनुपात में वृद्धि का सुझाव महत्वपूर्ण माना जा रहा है। इससे यह संदेश जाता है कि जनसंख्या नियंत्रण करने वाले राज्यों को दंडित नहीं किया जाएगा और तेजी से बढ़ती आबादी वाले राज्यों को असंतुलित राजनीतिक लाभ भी नहीं मिलेगा। भारतीय संघवाद की दृष्टि से यह संतुलित सोच प्रतीत होती है।

परिसीमन का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक और भौगोलिक प्रतिनिधित्व है। तेज शहरीकरण के कारण महानगरों और नगर क्षेत्रों की आबादी तेजी से बढ़ी है, जबकि कई ग्रामीण क्षेत्रों में वृद्धि अपेक्षाकृत कम रही है। ऐसे में निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण वर्तमान जनसंख्या और सामाजिक संरचना के अनुरूप होना चाहिए। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों के पुनर्गठन की संभावना भी सामाजिक न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हो सकती है।

लोकसभा सीटों की संख्या बढ़ने से राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों की रणनीतियों में बदलाव आएगा। नए निर्वाचन क्षेत्रों के गठन से नए नेतृत्व को अवसर मिलेंगे, वहीं चुनावी प्रबंधन और संसदीय कार्यप्रणाली जैसी व्यावहारिक चुनौतियां भी सामने आएंगी। इसलिए परिसीमन प्रक्रिया पूरी तरह पारदर्शी, निष्पक्ष और व्यापक राजनीतिक सहमति पर आधारित होनी चाहिए।

भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व को समयानुकूल बनाना अनिवार्य है। परिवर्तन आवश्यक है, लेकिन वह ऐसा हो जो राष्ट्रीय एकता को मजबूत करे, राज्यों के बीच विश्वास बनाए रखे और लोकतंत्र को अधिक सहभागी बनाए। यदि परिसीमन संतुलित दृष्टिकोण, पारदर्शी प्रक्रिया और व्यापक सहमति के साथ लागू किया गया तो यह भारतीय लोकतंत्र को अधिक प्रतिनिधिक और प्रभावशाली बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

आजकल

साइबर सुरक्षा का नया मंत्र जागरूकता से ही बनेगा डिजिटल भारत सुरक्षित

डिजिटल युग ने जीवन को जितना सरल बनाया है, उतनी ही तेजी से नए खतरे भी सामने आए हैं। आज बैंकिंग, खरीदारी, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं और सरकारी योजनाओं का बड़ा हिस्सा इंटरनेट आधारित हो चुका है। ऐसे में साइबर अपराध केवल तकनीकी चुनौती नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा का भी बड़ा प्रश्न बन गया है। यही कारण है कि साइबर सुरक्षा को लेकर चलाए जा रहे जागरूकता अभियानों का महत्व लगातार बढ़ रहा है।

हाल ही में राज्यव्यापी साइबर जागरूकता अभियान के दूसरे चरण की शुरुआत इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। इसका संदेश स्पष्ट है कि साइबर सुरक्षा केवल पुलिस या तकनीकी विशेषज्ञों की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक की सामूहिक जिम्मेदारी है। यदि आम लोग सतर्क और जागरूक होंगे तो साइबर अपराधियों की रणनीतियां स्वत: विफल हो सकती हैं।

आज साइबर अपराध के तरीके पहले की तुलना में अधिक जटिल हो चुके हैं। फर्जी लिंक, नकली वेबसाइट, डिजिटल गिरफ्तारी, ऑनलाइन निवेश के नाम पर धोखाधड़ी, सोशल मीडिया हैकिंग और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित ठगी के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं। अपराधी लोगों की भावनाओं, भय और लालच का लाभ उठाकर उन्हें जाल में फंसाते हैं। कई बार पढ़े-लिखे और तकनीकी रूप से सक्षम लोग भी इनके शिकार बन जाते हैं।

साइबर सुरक्षा के तीन मूल सूत्र हैं—जागरूकता, सावधानी और सहभागिता। संदिग्ध संदेश, कॉल या लिंक पर बिना जांचे भरोसा न करें और किसी भी साइबर अपराध की तत्काल शिकायत करें। केवल कानून पर्याप्त नहीं हैं। तकनीक के साथ अपराधियों के तरीके भी बदल रहे हैं, इसलिए स्कूलों, कॉलेजों और ग्रामीण क्षेत्रों तक साइबर साक्षरता पहुंचाना समय की मांग है।

भारत तेजी से डिजिटल अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। डिजिटल भुगतान और ई-शासन का विस्तार तभी सुरक्षित रहेगा, जब नागरिक सतर्क रहेंगे। एक गलत क्लिक वर्षों की कमाई और निजी जानकारी को खतरे में डाल सकता है, जबकि थोड़ी-सी सावधानी बड़े नुकसान से बचा सकती है। सुरक्षित और भरोसेमंद डिजिटल भारत का आधार जागरूक नागरिक ही हैं।

अस्पताल की आड़ में चल रहा नशे का कारोबार

पुलिस की कार्रवाई पर पानी फेर रहे सौदागर, युवा पीढ़ी दांव पर

पिछले दिनों हुई कई छापेमार कार्रवाइयों में यह बात सामने आई कि नशीली दवाइयों की तस्करी अब खुले बाजार से हटकर अस्पतालों और फार्मेसियों के भीतर पहुंच गई है। डॉक्टर की पर्ची के नाम पर नींद की गोलियां, दर्द निवारक कैप्सूल और नशे के लिए इस्तेमाल होने वाले सिरप धड़ल्ले से बेचे जा रहे हैं।

जब इलाज की जगह बीमारी बेची जाने लगे, जब दवा की दुकान नशे का अड्डा बन जाए, तब समझ जाना चाहिए कि समाज की रीढ़ में दीमक लग चुकी है। मध्यप्रदेश में नशे के खिलाफ पुलिस और नारकोटिक्स विभाग की लगातार कार्रवाई चल रही है। हर महीने बड़े पैमाने पर एमडी ड्रग्स बरामद हो रही है, करोड़ों रुपये की खेप पकड़ी जा रही है और तस्कर गिरफ्तार हो रहे हैं। इसके बावजूद नशे का कारोबार रुकने का नाम नहीं ले रहा। इसका कारण स्पष्ट है। अब नशे के सौदागर नए ठिकाने तलाश चुके हैं और सबसे खतरनाक ठिकाना बन चुके हैं अस्पताल और दवा की दुकानें, जहां मरीज को बचाने वाली दवा ही युवा पीढ़ी को बर्बाद करने का हथियार बनती जा रही है।

पिछले दिनों हुई कई छापेमार कार्रवाइयों में यह बात सामने आई कि नशीली दवाइयों की तस्करी अब खुले बाजार से हटकर अस्पतालों और फार्मेसियों के भीतर पहुंच गई है। डॉक्टर की पर्ची के नाम पर नींद की गोलियां, दर्द निवारक कैप्सूल और नशे के लिए इस्तेमाल होने वाले सिरप धड़ल्ले से बेचे जा रहे हैं। मरीज के नाम पर फर्जी पर्चियां बनाई जाती हैं और देखते ही देखते अस्पताल की दवा की दुकान नशे के अड्डे में बदल जाती है। जब इलाज करने वाली जगह से ही नशा मिलने लगे, तो सड़क पर की गई पुलिस कार्रवाई का क्या लाभ? तस्करों को पता है कि कानून का डर उन्हें सड़क पर है, लेकिन अस्पताल के भीतर वे सफेद कोट की आड़ में सुरक्षित हैं।

इस खेल के पीछे बड़े नशे के सौदागर हैं, जो पुलिस की हर कार्रवाई के बाद अपना रास्ता बदल लेते हैं। पहले नशा सीमा पार से आता था, फिर छोटे तस्करों के जरिए शहरों तक पहुंचता था। अब नेटवर्क सीधे अस्पतालों और दवा विक्रेताओं तक पहुंच गया है, क्योंकि यहां मुनाफा सबसे अधिक और पकड़े जाने का खतरा सबसे कम है। एक तरफ पुलिस की सख्ती से सड़क पर तस्करी महंगी हो गई है, तो दूसरी तरफ अस्पतालों की आड़ में तस्करी आसान हो गई है। यही कारण है कि नारकोटिक्स विभाग की लगातार छापेमारी के बावजूद एमडी जैसे ड्रग्स की सप्लाई बनी हुई है, क्योंकि सप्लाई लाइन का एक सिरा अब उस जगह पहुंच चुका है, जहां सामान्यत: किसी को संदेह नहीं होता।

सबसे चिंताजनक बात यह है कि इस धंधे में लिप्त कुछ डॉक्टर, फार्मासिस्ट और अस्पताल संचालक भी शामिल पाए जा रहे हैं, जो लालच में आकर मानवता को बेच रहे हैं। मरीज की मजबूरी का फायदा उठाकर फर्जी पर्चियां बनाई जाती हैं, बिना उचित जांच के नशीली दवाएं दे दी जाती हैं और बदले में मोटा कमीशन लिया जाता है। जब समाज का वह वर्ग, जो जीवन बचाने की शपथ लेता है, वही नशे का कारोबार करने लगे, तो पुलिस अकेले क्या कर सकती है? बंदूक से गोली चलाई जा सकती है, लेकिन सफेद कोट के भीतर छिपे अपराध को पकड़ना कहीं अधिक कठिन होता है। इसलिए नशे के कारोबार पर अंकुश लगाने के लिए केवल पुलिस की कार्रवाई पर्याप्त नहीं है। अस्पताल प्रशासन और दवा नियामक तंत्र को भी अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी।

इसका सबसे अधिक दुष्प्रभाव युवाओं पर पड़ रहा है। स्कूल और कॉलेजों के बाहर खड़े तस्कर अब अस्पतालों के चक्कर लगाने लगे हैं। उन्हें पता है कि यदि कोई युवा सीधे नशा मांगेगा तो पकड़ा जाएगा, लेकिन यदि वह पेट दर्द या अनिद्रा की शिकायत लेकर डॉक्टर के पास जाए और मिलीभगत से नशीली दवा हासिल कर ले, तो उसे रोकने वाला कोई नहीं होगा। इस तरह नशे की लत लगना आसान हो गया है। एक बार लत लगने के बाद युवा अपना भविष्य, परिवार और समाज सब कुछ दांव पर लगा देता है। नशे का कारोबार इसी कमजोरी पर फलता-फूलता है, क्योंकि एक नशेड़ी के पीछे दस नए ग्राहक तैयार हो जाते हैं।

इस समस्या का समाधान केवल छापेमारी से नहीं होगा, बल्कि पूरी व्यवस्था को सुधारना होगा। सबसे पहले डॉक्टरों और फार्मासिस्टों की पर्ची प्रणाली को डिजिटल और पारदर्शी बनाया जाए। हर नशीली दवा की बिक्री का रिकॉर्ड ऑनलाइन होना चाहिए, ताकि एक ही व्यक्ति अलग-अलग दुकानों से बार-बार दवा न खरीद सके। अस्पतालों में दवा बिक्री पर कड़ी निगरानी रखी जाए, नियमित औचक निरीक्षण हों और फर्जी पर्चियां बनाने वाले डॉक्टरों का लाइसेंस तत्काल निरस्त किया जाए। साथ ही समाज को भी जागरूक करना होगा। माता-पिता, शिक्षक और विद्यार्थियों को यह समझाना होगा कि नशा आनंद नहीं, बल्कि धीरे-धीरे मौत की ओर ले जाने वाला रास्ता है। स्कूलों और कॉलेजों में नशा विरोधी अभियान चलाए जाएं तथा पुनर्वास केंद्रों को और अधिक प्रभावी बनाया जाए।

पुलिस और नारकोटिक्स विभाग का कार्य सराहनीय है। उन्होंने कई बड़े नेटवर्क ध्वस्त किए हैं और करोड़ों रुपये की ड्रग्स जब्त की है। लेकिन जब तक अस्पताल और दवा की दुकानें नशे के कारोबार का माध्यम बनी रहेंगी, तब तक तस्कर हर बार नया रास्ता खोज लेंगे। अब लड़ाई केवल सड़क पर नहीं, बल्कि ऑपरेशन थिएटर से लेकर मेडिकल स्टोर तक लड़नी होगी। जहां दवा जीवन बचाने के लिए होती है, वहां मौत का सौदा नहीं होना चाहिए।

नशे का कारोबार तभी रुकेगा, जब उसकी मांग खत्म होगी और मांग तभी घटेगी, जब युवाओं को नशे से बेहतर विकल्प मिलेंगे। खेल, शिक्षा, कौशल विकास और रोजगार के अवसर युवाओं को नशे से दूर रख सकते हैं। साथ ही अस्पतालों की आड़ में धंधा चलाने वाले बड़े सौदागरों पर कठोर कार्रवाई होनी चाहिए। सफेद कोट पहनकर अपराध करने वाले डॉक्टरों और फार्मासिस्टों को सबसे कड़ी सजा मिलनी चाहिए, क्योंकि गद्दार हमेशा दुश्मन से अधिक खतरनाक होता है। समाज को यह तय करना होगा कि अस्पताल मंदिर हैं या मंडी। मंदिर में जीवन बचाया जाता है, मंडी में सौदा होता है। यदि अस्पताल मंडी बन गए, तो आने वाली पीढ़ियां बर्बाद हो जाएंगी। इसलिए समय की मांग है कि पुलिस, प्रशासन, समाज और स्वास्थ्य तंत्र मिलकर इस गंदगी को साफ करें, वरना वह दिन दूर नहीं जब हर गली में अस्पताल होगा और हर अस्पताल नशे की दुकान बन जाएगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

पेड़ों को कानूनी दर्जा देने की पहल ...

पर्यावरण रक्षा की दिशा में क्रांतिकारी कदम

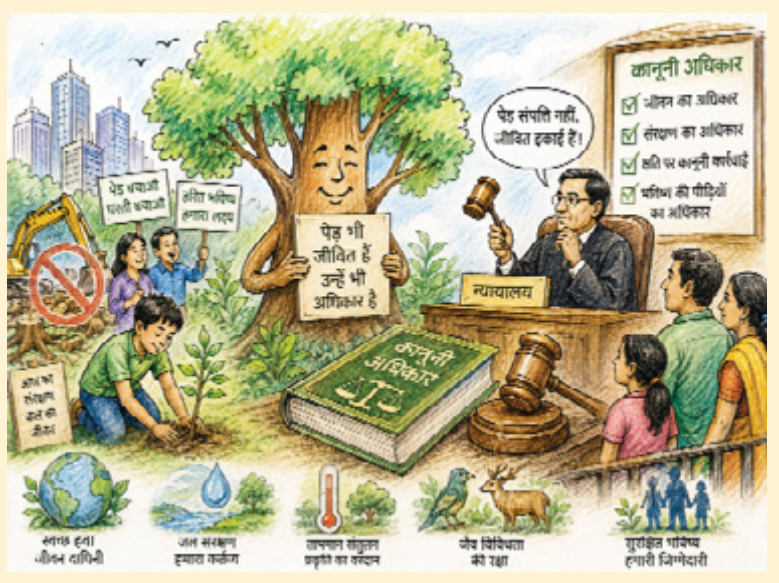

इस अवधारणा का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि भविष्य की पीढ़ियों के हितों की भी रक्षा होगी। अभी तक हम केवल आज के लाभ के लिए जंगल साफ कर देते थे, लेकिन कल की पीढ़ियों के हिस्से की स्वच्छ हवा और हरियाली छीन लेते थे। पेड़ों को कानूनी दर्जा मिलने से अदालतें और नीति निर्माता केवल वर्तमान की जरूरतों को नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के अधिकारों को भी ध्यान में रखेंगे।

जब कोई शहर यह घोषणा करता है कि उसके क्षेत्र में उगने वाले पेड़ अब केवल संपत्ति नहीं, बल्कि जीवित प्राणी हैं, तो यह सामान्य खबर नहीं रह जाती। यह मानव सभ्यता की सोच में एक बड़े बदलाव का संकेत है। यह परिवर्तन बताता है कि अब विकास का अर्थ केवल कंक्रीट और इस्पात के ढांचे खड़े करना नहीं, बल्कि उस धरती को बचाना भी है, जो हमें हवा, पानी और जीवन देती है। पेड़ों को कानूनी अधिकार देने की यह पहल पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में एक नए युग की शुरुआत है, जहां प्रकृति को उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि सहजीवी साथी के रूप में देखा जाएगा।

मानव ने सदियों से प्रकृति को केवल संसाधन माना है। जंगल काटे, नदियों पर बांध बनाए, पहाड़ों को खोद डाला और बदले में बाढ़, सूखा तथा प्रदूषण जैसी विपदाएं झेलीं। अब विज्ञान भी मान रहा है कि पेड़ केवल लकड़ी का स्रोत नहीं, बल्कि एक जटिल जीव है, जो जमीन के नीचे अपनी जड़ों के माध्यम से एक-दूसरे से संवाद करता है। वह कार्बन सोखता है, तापमान नियंत्रित करता है, भूमिगत जल को संरक्षित रखता है और जैव विविधता को आश्रय देता है। जब एक पेड़ काटा जाता है, तो केवल उसका तना नहीं गिरता, बल्कि उससे जुड़े हजारों जीवों का घर उजड़ जाता है और धरती का फेफड़ा कमजोर हो जाता है। इसलिए पेड़ों को कानूनी व्यक्ति का दर्जा देना केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और तार्किक निर्णय भी है।

जब पेड़ों को जीवित इकाई माना जाएगा, तो उन्हें भी जीने का अधिकार मिलेगा, ठीक वैसे ही जैसे मनुष्य को जीने का अधिकार प्राप्त है। यदि कोई पेड़ काटा जाएगा, तो उसे केवल संपत्ति का नुकसान नहीं, बल्कि एक जीव को क्षति पहुंचाने के रूप में देखा जाएगा। इसके लिए न्यायिक कार्रवाई संभव होगी और नुकसान पहुंचाने वाले को दंड मिल सकेगा। इस व्यवस्था से विकास के नाम पर होने वाली अंधाधुंध कटाई पर रोक लगेगी और शहरी नियोजन में हरित क्षेत्रों को प्राथमिकता मिलेगी। अभी तक विकास और पर्यावरण को एक-दूसरे का विरोधी माना जाता था, लेकिन अब यह स्पष्ट होगा कि पेड़ों के बिना विकास टिकाऊ नहीं हो सकता।

इस अवधारणा का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि भविष्य की पीढ़ियों के हितों की भी रक्षा होगी। अभी तक हम केवल आज के लाभ के लिए जंगल साफ कर देते थे, लेकिन कल की पीढ़ियों के हिस्से की स्वच्छ हवा और हरियाली छीन लेते थे। पेड़ों को कानूनी दर्जा मिलने से अदालतें और नीति निर्माता केवल वर्तमान की जरूरतों को नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के अधिकारों को भी ध्यान में रखेंगे। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी न्याय की वह अवधारणा है, जो कहती है कि धरती हमारी विरासत नहीं, बल्कि हमने इसे अपने बच्चों से उधार लिया है। इसलिए इसे सुरक्षित लौटाना हमारा कर्तव्य है।

इससे शहरी नियोजन की पूरी परिभाषा भी बदल जाएगी। अब तक सड़क चौड़ी करने के नाम पर सैकड़ों पेड़ काट दिए जाते थे और बदले में कुछ नए पौधे लगाने का वादा कर दिया जाता था। लेकिन एक विशाल, वर्षों पुराने पेड़ की जगह दस नए पौधे भी नहीं ले सकते, क्योंकि पुराने पेड़ की छाया, उसकी जड़ों की गहराई और उसके द्वारा वर्षों में सोखा गया कार्बन अमूल्य होता है। जब पेड़ को जीवित प्राणी का दर्जा मिलेगा, तो सड़क बनाने से पहले यह विचार करना होगा कि क्या उसे बचाया जा सकता है या मार्ग बदला जा सकता है। विकास की योजनाएं इस प्रकार बनेंगी कि प्रकृति को न्यूनतम नुकसान पहुंचे। पेड़ों को कानूनी अधिकार देने से जैव विविधता की रक्षा भी मजबूत होगी। जंगल केवल पेड़ों का समूह नहीं, बल्कि पक्षियों, जानवरों, कीटों और सूक्ष्म जीवों का घर हैं। जब जंगल को केवल संपत्ति माना जाता था, तब उसकी कीमत लकड़ी से आंकी जाती थी। लेकिन जब उसे जीवित इकाई माना जाएगा, तो उसके भीतर रहने वाले हर जीव के अधिकार भी सुरक्षित होंगे। इससे वन्यजीव संरक्षण को बल मिलेगा और मनुष्य तथा प्रकृति के बीच टकराव कम होगा, क्योंकि दोनों के अस्तित्व को समान महत्व मिलेगा।

आर्थिक दृष्टि से भी यह कदम दूरदर्शी है। अभी तक हम पेड़ों से मिलने वाले लाभों को मुफ्त मानते रहे हैं। स्वच्छ हवा, पीने का पानी, उपजाऊ मिट्टी और मौसम का संतुलन जैसी सेवाओं की कोई बाजार कीमत तय नहीं होती। इसलिए इनके विनाश पर भी समाज गंभीर नहीं होता। लेकिन जब पेड़ कानूनी व्यक्ति होंगे, तो उनके द्वारा जीवनभर दी गई सेवाओं का भी मूल्यांकन होगा। यदि कोई उद्योग पेड़ काटकर प्रदूषण फैलाता है, तो उसे केवल जुर्माना ही नहीं, बल्कि उस पेड़ द्वारा दी गई पर्यावरणीय सेवाओं की भरपाई भी करनी होगी। इससे प्रदूषण महंगा और स्वच्छ तकनीक अपेक्षाकृत सस्ती होगी।

सामाजिक स्तर पर भी यह पहल लोगों की सोच बदलेगी। जब बच्चा स्कूल में पढ़ेगा कि पेड़ भी जीवित हैं और उनके भी अधिकार हैं, तो वह उन्हें काटने से पहले अवश्य सोचेगा। जब नागरिक देखेगा कि पेड़ों को भी न्याय मिल सकता है, तो वह उनकी रक्षा के लिए आगे आएगा। यह केवल कानून नहीं, बल्कि एक ऐसा संस्कार है, जो आने वाली पीढ़ियों को प्रकृति से जोड़ेगा और उपभोक्तावादी संस्कृति के स्थान पर सतत जीवनशैली अपनाने की प्रेरणा देगा। समाज में पेड़ लगाना उत्सव बनेगा और उन्हें बचाना जनआंदोलन।

पेड़ों को कानूनी दर्जा देना मानव सभ्यता के विकास का अगला पड़ाव है। अब तक हमने प्रकृति को मां कहा, लेकिन व्यवहार में उसका सम्मान नहीं किया। समय आ गया है कि कहने और करने के बीच का अंतर समाप्त किया जाए। जब तक पेड़ों को केवल संपत्ति माना जाएगा, तब तक उन्हें काटना आसान रहेगा। लेकिन जब उन्हें जीवित प्राणी का दर्जा मिलेगा, तो उनकी रक्षा हमारी कानूनी और नैतिक जिम्मेदारी बन जाएगी। यह पहल याद दिलाती है कि धरती पर मनुष्य मालिक नहीं, बल्कि प्रकृति का एक हिस्सा है और उसका भविष्य भी उसी पर निर्भर है। जितनी प्रकृति सुरक्षित होगी, उतना ही जीवन सुरक्षित रहेगा। इसलिए पेड़ों को अधिकार देना, वास्तव में मनुष्य के अपने भविष्य को सुरक्षित करना है, क्योंकि यदि पेड़ सांस लेंगे, तभी मनुष्य भी सांस ले सकेगा और आने वाली पीढ़ियों के लिए यह धरती हरी-भरी बनी रहेगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

सोच मशीन लिख सकती है, पर जिया हुआ दर्द नहीं

एआई मौलिकता की परख पर अटकी

तकनीक ने सृजन की दुनिया का नक्शा बदल दिया है। अब कुछ शब्द टाइप कीजिए और सेकंडों में कहानी तैयार हो जाती है। एक प्रॉम्प्ट दीजिए और गजल लिखी हुई सामने आ जाती है। अनुवाद कहिए और भाषा की दीवार मानो गिर जाती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता अब केवल हिसाब-किताब का यंत्र नहीं रही, बल्कि लेखन, कला, संगीत और चित्रकारी जैसे सृजनात्मक क्षेत्रों में भी अपनी जगह बना चुकी है। लेकिन इसी सुविधा के साथ एक गंभीर सवाल भी खड़ा हो गया है। जो रचना मशीन ने लिखी, क्या वह वास्तव में मौलिक सृजन है या लाखों पुरानी रचनाओं का नया संयोजन?

एक अंतरराष्ट्रीय लेखन प्रतियोगिता में एआई से लिखवाई गई कहानी ने पुरस्कार जीत लिया। जब आयोजकों को पता चला कि शब्दों के पीछे किसी इंसान का अनुभव नहीं, बल्कि डेटा का विश्लेषण और एल्गोरिदम का संयोजन है, तब पूरे साहित्य जगत में बहस छिड़ गई कि श्रेय किसे मिले – प्रॉम्प्ट लिखने वाले को या कोड चलाने वाले एल्गोरिदम को? यह घटना बताती है कि एआई अब मंच पर आ चुका है। वह केवल सहायक नहीं रहा, बल्कि रचनाकार की कुर्सी पर भी बैठने लगा है। एआई कुछ ही सेकंड में हजारों किताबों, गीतों और कविताओं का विश्लेषण कर उनके पैटर्न पहचान लेता है। उसे पता है कि प्रेम के बाद विरह और आंसुओं का उल्लेख होता है, इसलिए वह उसी क्रम में भाव लिख देता है। उसे यह भी मालूम है कि गजल में मक्ता कैसे आता है, इसलिए वह मक्ता भी गढ़ देता है। अनुवाद के क्षेत्र में उसकी गति चौंकाने वाली है। एक हिंदी कविता को अंग्रेजी में ढालना अब मिनटों का काम रह गया है और कई बार अनुवाद का स्तर इतना बेहतर होता है कि मूल भाव भी सुरक्षित रहता है। सोशल मीडिया के कंटेंट निर्माता, संपादक और ब्लॉगर अब एआई को पहला ड्राफ्ट तैयार करने वाला सहयोगी मानने लगे हैं, क्योंकि वह दोहराव वाला श्रम कम कर समय बचाता है।

लेकिन एआई की सबसे बड़ी सीमा यह है कि उसके पास अनुभव नहीं है। वह बरसात में भीगी मिट्टी की सोंधी गंध महसूस नहीं कर सकता। वह उस मां की पीड़ा नहीं समझ सकता, जिसका बेटा सीमा पर शहीद हुआ हो। वह केवल शब्दों का गणित जानता है। इसलिए आलाप, आरोह और अवरोह जैसी बारीकियां, जो किसी राग को उसकी आत्मा देती हैं, एआई के लिए केवल तकनीकी संरचना भर हैं। वह सुर तो लगा सकता है, लेकिन राग की आत्मा नहीं पकड़ सकता। मशीन शैली की नकल कर सकती है, पर आत्मा की नहीं।

एक और भ्रम तेजी से बढ़ रहा है। अब एआई आधारित टूल स्वयं प्रॉम्प्ट भी तैयार करने लगे हैं। इसका अर्थ है कि इंसान को सोचने की आवश्यकता भी धीरे-धीरे कम पड़ रही है। आप केवल विषय बताइए, मशीन प्रश्न बनाएगी, उत्तर लिखेगी और उसे आकर्षक रूप में प्रस्तुत भी कर देगी। परिणाम यह है कि सोशल मीडिया पर प्रतिदिन हजारों पोस्ट वायरल हो रही हैं, जिनमें यह तय करना कठिन हो गया है कि लेखक इंसान है या मशीन। यह स्थिति पाठकों के भरोसे को भी प्रभावित कर रही है, क्योंकि भावनाओं से जुड़ने के लिए यह विश्वास जरूरी है कि शब्दों के पीछे एक धड़कता हुआ दिल मौजूद है।इस चुनौती का समाधान विरोध नहीं, बल्कि संतुलन है। एआई का उपयोग एक औजार की तरह किया जाना चाहिए, हथियार की तरह नहीं। वह कच्चा मसौदा तैयार कर सकता है, रूपरेखा बना सकता है और भाषा को बेहतर बना सकता है, लेकिन अंतिम निर्णय इंसान का ही होना चाहिए। सृजन केवल शब्दों का संयोजन नहीं होता। सृजन एक दृष्टि, एक संवेदना और एक स्वप्न होता है, जिसे केवल मनुष्य ही पूरी गहराई से जी सकता है। शिक्षा और साहित्य की दुनिया को अब विद्यार्थियों को यह सिखाना होगा कि मशीन से सहायता लें, लेकिन मशीन बनकर न जीएं। एआई सृजन को नई दिशा दे रहा है, इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन मौलिकता की चुनौती अभी भी बनी हुई है। मशीन शब्द दे सकती है, अर्थ नहीं। मशीन लय दे सकती है, सुर नहीं। मशीन कहानी लिख सकती है, लेकिन उस कहानी की धड़कन नहीं दे सकती। जब तक धड़कन नहीं होगी, तब तक रचना केवल जानकारी रहेगी, अनुभव नहीं बन पाएगी। इसलिए कलम इंसान के हाथ में ही रहनी चाहिए, क्योंकि सृजन का असली आनंद तभी है, जब शब्दों के पीछे एक संवेदनशील मनुष्य खड़ा हो और वह अपने समय, समाज और जीवन से संवाद कर रहा हो।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)